घनानन्द की विरहानुभूति

विरह प्रेम की कसौटी है। जो विरही इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही सच्चा प्रेमी माना जाता है, क्योंकि प्रेम का सात्विक रूप विरह है, जबकि संयोग प्रेम का राजस रूप है। संयोग में प्रेमी वासना का शिकार बना रहता है, जबकि वियोग में वह वासना से ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर लेता है। वैसे भी संयोग में प्रेम के वास्तविक रूप का पता नहीं चलता, क्योंकि प्रेमियों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति कितनी दृढ़ता है, कितनी निष्ठा है, कितनी आतुरता है, कितनी तीव्रता है और कितनी चाह है, इसका ज्ञान विरह में ही होता है। विरह प्रेमी की दृढ़ता का परिचायक होता है; विरह ही उसकी निष्ठा एवं उत्कण्ठा का द्योतक होता है और विरह ही एक प्रेमी की प्रिय के प्रति उत्कट चाह, तीव्र, आकांक्षा, सुदृढ़ लालसा एवं उद्दाम आकुलता का ज्ञापक होता है। इसीलिए विरह-काव्य सर्वाधिक हृदय-द्रावक, चित्ताकर्षक एवं संवेदनात्मक होता है। घनानन्द भी ऐसे ही विरही कवि हैं, जिनके हृदय में अपनी प्रेयसी 'सुजान' की उत्कट विरह-भावना भरी हुई है। घनानन्द के विरह में हृदय की उद्दाम लालसा एवं उत्कंठा का प्राधान्य है, उसमें अनुभूति की तीव्रता है, अन्तःकरण की सात्विक वेदना का आधिक्य है और बाह्य आडम्बर लेशमात्र भी नहीं है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि **"घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह पाप को बाहरी पैमाने से मापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल-उछल कर भागना है। उनकी 'मौन मधि पुकार' है।"**[1] पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने घनानन्द की प्रेम-साधना का नित्य लक्षण ही विरह घोषित किया है और लिखा है कि घनानन्द के "इस प्रेम मार्ग का नित्य लक्षण है—परम संताप की साधना। इस प्रेम का नाम लेने पर ही जीभ में छाले पड़ जाते हैं। इसलिए कि विरह की वेदना का, परम ज्यालामयी वेदना का, जीभ ने अनुभव किया कि वह संतप्त हुई। जहाँ प्रेम की चर्चा में ही यह स्थिति है वहाँ की साधना करना, उसके मार्ग पर चलना कितना कठिन है, केवल कल्पना से ही जाना जा सकता है। इसी से इस प्रेम-साधना का नित्य लक्षण है—विरह।"[2] इस तरह घनानन्द की विरह-वेदना मौन है, स्वानुभूत है, अकृत्रिम है और उसमें हृदय-पक्ष की प्रधानता है। सुविधा की दृष्टि से घनानन्द के विरह-निरूपण की विशेषताओं को 10 शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं—(1) रूपासक्ति की प्रधानता, (2) हृदय की मौन पुकार की अधिकता, (3) प्रिय-जन्य निष्ठुरता, (4) प्रेमगत विषमता, (5) अन्तर्वृत्तियों की बहुलता, (6) उपालम्भ की

तीव्रता, (7) अंग-प्रत्यंग की तीव्र आकुलता, (8) प्रकृति-जन्य उद्दीप्तता, (9) संदेश-प्रेषणीयता और (10) सात्विकता एवं आध्यात्मिकता।

(1) रूपासक्ति की प्रधानता—घनानन्द के उत्कट विरह का मूल कारण यह है कि उनकी 'अलबेली सुजान' अनिंद्य सुन्दरी थी, उसमें उन्हें अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन हुए थे और वे उस सौन्दर्य को नित्य देखते रहना चाहते थे। कारण यह था कि वह रूप उन्हें नित्य नया-नया प्रतीत होता था और उस रूप पर उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। परन्तु दुर्भाग्य ! वह रूप उनकी आँखों से ओझल हो गया, उन्हें फिर देखने को नहीं मिला और वे अपनी उस पागल रीझ के हाथों बिककर रात-दिन वियोग की आग में जलते रहे—

रावरे रूप की रीति अनूप नयो-नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारिये।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, यहै घनआनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।

(2) हृदय की मौन पुकार की अधिकता—घनानन्द का विरह बौद्धिक नहीं है, वह उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है और जहाँ विरह बौद्धिक होता है, वहाँ प्रदर्शन एवं आडम्बर का आधिक्य देखा जाता है, किन्तु जहाँ विरह हृदय की अनुभूति होता है वहाँ प्रदर्शन एवं आडम्बर कहाँ ! वहाँ तो हृदय की टीस, प्राणों की तड़पन और मन की आकुलता का आधिक्य होता है और वह टीस, तड़पन एवं आकुलता बाहर नहीं सुनाई पड़ती, क्योंकि हृदय बोल नहीं पाता, वह मौन रहकर ही धड़कता रहता है, प्राण कुछ कह नहीं पाते, चुपचाप तड़पते रहते हैं और मन चीत्कार नहीं कर पाता, वह अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है तथा आकुल बना रहता है। यही कारण है कि घनानन्द का विरह बाह्य चीत्कार, बाह्य कोलाहल एवं बाह्य शोरगुल से सर्वथा दूर हृदय की मौन पुकार है तथा अन्तःकरण की आन्तरिक जलन है, जिसमें विरही के प्राण तपते रहते हैं, अंग उसीजते रहते हैं और वह जी मसोस-मसोस कर तड़पता रहता है—

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंत उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सुधरै नहीं थ्यावस।।

(3) प्रिय-जन्य निष्ठुरता—घनानन्द के विरह की तीव्रता एवं उत्कटता का मूल कारण यह है कि उनका प्रिय बड़ा कठोर है, निर्दय है, निष्ठुर है तथा विश्वासघाती है। उसको इनकी तनिक भी परवाह नहीं है, वह इनकी दुर्दशा देखकर तनिक भी नहीं पसीजता और अब उसने जान-पहचान भी मिटा डाली है। वह अब इन्हें बिल्कुल भूल गया है, जबकि पहले बड़ी मीठी-मीठी बातें करके इनको बहका लिया था। उसी ने इनके हृदय को ठग लिया था और अब निष्ठुरता एवं कठोरता का व्यवहार करके रात-दिन इनको जलाता रहता है, कलपाता रहता है तथा बेचैन बनाये रखता है—

भए अति निठुर मिटाय पहिचानि डारी,
यही दुख हमैं जक लगी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यों हूँ न भुलाय है।
मीठे-मीठे बोल बोलि, ठगी पहले तो तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसें कज पाए है।।

(4) प्रेमगत विषमता—घनानन्द के विरह में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक एकांगी है, सम नहीं है, अपितु विषम है, क्योंकि जो तड़पन है, चीत्कार है, जलन है, धड़कन है यह एक ओर ही है—केवल प्रेमी का ही हृदय अपने प्रिय (प्रेयसी सुजान) के विरह में रात-दिन तड़पता रहता है, जबकि उनके प्रिय के हृदय में विरह की तनिक भी आग नहीं है, तनिक भी आकुलता-व्याकुलता नहीं है तथा तनिक भी बेचैनी नहीं है। यह प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, उसके लिए जितना कलपता रहता है, प्रिय उसको न तो उतना चाहता है और न ही उतना कलपता एवं तड़पता दिखाई देता है परन्तु प्रेमी घनानन्द को इसकी चिन्ता नहीं है कि उनका प्रिय उनके प्रति कैसे भाव रखता है, वे तो अपने प्रिय के अनन्य प्रेमी हैं और उनके तो रोम-रोम में प्रीति बसी हुई है—

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रोमी है।

(5) अन्तर्वृत्तियों की बहुलता—घनानन्द के विरह में हृदय-पक्ष की प्रधानता है, अन्तःकरण के मनोवेगों की अधिकता है, मन की विविध गतिविधियों की प्रचंडता है और चित्तवृत्तियों के उद्दाम वेग की बहुलता है। इसीलिए घनानन्द के विरह में अन्तर्वृत्तियों के विविध रूपों के दर्शन होते हैं, नाना प्रकार की अन्तर्दशाओं के दर्शन होते हैं, विविध कामदशाओं को देखा जा सकता है और अनेक प्रकार की चित्तवृत्तियों के मार्मिक चित्र देखे जा सकते हैं। साहित्य-शास्त्र में इन अन्तर्वृत्तियों या कामदशाओं की संख्या दस मानी गई है—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। परन्तु घनानन्द ने इन शास्त्रीय अन्तर्वृत्तियों का चित्रण न करके कहीं तो हृदय की तीव्र लालसा का निरूपण इस तरह किया है—

निसदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है।

और कहीं अन्तःकरण की अनेक तीव्र आकांक्षाओं एवं आशाओं से लिपटी हुई अन्तर्वृत्तियों को एक ही स्थान पर प्रकट करके अपने विरह की प्रचंडता को इस तरह व्यक्त किया है—

अन्तर हौ किधौं अन्त रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनन्द ऐसी रुची, तो कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती में धँसौं के अकासहिं चीरौं।।

(6) उपालम्भ की तीव्रता—घनानन्द के विरह में उपालम्भ अत्यन्त गूढ़ता एवं गम्भीरता के साथ दृष्टिगोचर होता है। इस उपालम्भ में विरह के प्रेम की एकनिष्ठा भरी हुई है, उत्कटता भरी हुई है और प्रिय के प्रेम की उदासीनता भी भरी हुई है। इसीलिए इन उपालम्भों में विरही ने स्वयं को अत्यन्त दीन, हीन, दुःखी, विनम्र एवं अनन्य प्रेमी कहा है तथा अपने प्रिय को कपटी, विश्वासघाती, छली, निर्मोही, सभी प्रकार से सुख-सम्पन्न एवं प्रेम-रहित कहा है। अपने प्रेम की इसी अनन्यता एवं एकनिष्ठा तथा प्रिय की उदासीनता एवं कपट व्यवहारपूर्ण कठोरता पर उपालम्भ देते हुए कवि ने कितनी मधुर उक्ति कही है—

अति सूधो सनेहु को मारग है जहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

इतना ही नहीं, प्रिय के सम्पूर्ण व्यवहारों की कटु आलोचना करते हुए कवि ने प्रिय की अनीति एवं निष्ठुरता पर कैसा करारा उपालम्भ दिया है—

क्यौं हँसि हेरि हर्‌यौ हियरा अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधा सने बैननि चैननि मैन-निसैन बढ़ाई।।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनन्द सालति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी इतै पै न जानियै कौनैं पढ़ाई।।

(7) **अंग-प्रत्यंग की आकुलता**—घनानन्द के विरह में आँख, कान, हृदय, प्राण आदि अंग-प्रत्यंगों की अत्यधिक आकुलता, बेचैनी एवं दयनीय स्थिति का चित्रण हुआ है। इसका कारण यह है कि विरही घनानन्द के सारे शरीर में विरह का विष फैला हुआ है, अंग-प्रत्यंग में विरह की आग लगी हुई है, जिससे उनके प्राण नित्य दहकते रहते हैं, नेत्र मदमाते होकर आँसू बहाते रहते हैं और श्रवणेन्द्रियाँ प्रिय वाणी सुनने के लिए आकुल-व्याकुल रही आती हैं। इतना ही नहीं, विरह की पीड़ा को न सह सकने के कारण उनके प्राण-पखेरू शरीर छोड़कर बाहर उड़ जाना चाहते हैं, परन्तु आशा-पाश में बद्ध होने के कारण वहीं अटके रहते हैं। वे कभी देखने की लालसा से आँखों में आ बैठते हैं, कभी कानों में आ बसते हैं और इसी तरह रात-दिन बेचैन और व्यग्र बने रहते हैं। आँखों की तो बड़ी भयंकर दशा हो रही है, जो देखे नहीं बनती। कवि के ही शब्दों में सुनिए—

जिनकों नित नीकें निहारति ही तिनकों अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अंसुवानि की धारनि धोवित हैं।।
घनआनन्द जान सजीवनि कों सपने बिन पाँएई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परें कछु ये दुखदाई जगे पर सोवति हैं।।

(8) **प्रकृति-जन्य उद्दीप्तता**—घनानन्द की विरह-वेदना को तीव्र से तीव्रतम बनाने में प्रकृति का भी अत्यधिक हाथ रहा है। कारण यह है कि प्रकृति के ये उपादान विरही के ऊपर कहर ढाने का काम करते हैं। कभी पुरवैया हवा चलकर उसे जलाने लगती है, कभी बादल घिर कर उसके हृदय को बहकाने लगते हैं, कभी बिजली चमक कर उसे दग्ध करने लगती है, कभी पुष्प अपनी सुगन्ध से उसे झुलसाने लगते हैं, कभी कोकिल कूक कर कलेजा निकालने लगती है; कभी पापी मोर और चातक कान फोड़ने लगते हैं और ये सभी दल-बल के साथ बिचारे वियोगी को सताने के लिए रात-दिन घिरे रहते हैं—

कारी कूर कोकिला ! कहाँ कौ बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबही करेजौ किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यौं ही,
चातक ! घातक त्यौं ही दुहूँ कान फोरि लै।।

इतना ही नहीं,

लहकि लहकि आबै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं-त्यौं तन तौंवरे तवै।
बहकि बहिक जात बदरा बिलोकें हियौ,
गहकि गहकि गहवरनि गरें मवै।।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहें,
कैसे घनआनन्द,सुजान बिन ज्यौं बचै।।
महँकि महँकि मारै पायस-प्रसून-बास,
आसिन उमास दैया कौलौं रहिये अँचै।।

(9) **सन्देश-प्रेषणीयता**—घनानन्द के विरह में एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें विरही अपने विरह के सन्देश को बड़े अनूठे ढंग से अपने प्रिय के पास भेजता है। उसने इस दूत-कार्य के लिए ऐसे धीर-गम्भीर विरही को चुना है, जो उसी की तरह विरह की आग को अपने हृदय में छिपाये हुए हैं, जो उसी की तरह प्रिय के वियोग में मदमत्त होकर घूमता रहता है, जो दूसरों के लिए ही अपना शरीर धारण किये हुए है और जो दूसरों के लिए ही उत्पन्न होने के कारण परजन्य (बादल) कहलाता है। ऐसे धीर-गम्भीर सज्जन से दूत-कार्य कराना सर्वथा उचित ही है, क्योंकि वह समुद्र के खारी पानी को भी अमृत तुल्य बना देता है और सबको जीवन-दान देता है। इसीलिए ऐसे उपयुक्त दूत के हाथ विरही घनानन्द अपना सन्देश अपने विश्वासघाती प्रिय के पास इस प्रकार भेजते हैं—

पर काजहिं देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ है दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ।।
घनआनन्द जीवन दायक हौ कछु मेरीयौ पीर हियै परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहूँ लै बरसौ।।

(10) **सात्विकता एवं आध्यात्मिकता**—घनानन्द के विरह में अन्तिम और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें तनिक भी वासना की गन्ध नहीं है, कहीं भी अश्लीलता नहीं है, किसी भी स्थल पर कामुकता नहीं है और कोई भी उक्ति काम-परक नहीं है। यहाँ प्रत्येक शब्द में सात्विकता है, प्रत्येक पद में प्रेम की पवित्रता है, प्रत्येक छन्द में प्रेम की दिव्यता है और प्रत्येक उक्ति में काम-जन्य वासना से सर्वथा परे आध्यात्मिक वेदना की शुद्धता है। इसीलिए घनानन्द के विरह में परम सत्ता की पुनीत इच्छा का प्रसार देखा जा सकता है, परमात्मा की व्यापक सत्ता का आभास देखा जा सकता है और परमात्मा से बिछुड़ी हुई आत्मा की पवित्र पुकार को सुना जा सकता है। यही कारण है कि विरही घनानन्द नित्य-प्रति वियोग में संयोग का और संयोग में वियोग का अनुभव करते हुए कभी अपने प्रिय से मिलते हैं, फिर मिलकर बिछुड़ जाते हैं, फिर बिछुड़े मिल जाते हैं, परन्तु घनानन्द का हृदय इतने पर भी सदैव उसी तरह प्यासा बना रहता है, जिस तरह बादलों के छाये रहने पर भी चातक प्यासा बना रहता है। यह है विरही के आध्यात्मिक एवं सात्विक विरह की पराकाष्ठा, जिसका प्रथम दर्शन घनानन्द के काव्य में ही होता है—

लहाछेह कहाधौं मचाय रहे ब्रजमोहन हौ उत नींद भरे हौ।
मिलि होति न भेंट दुरे उघरौ ठहरे ठहरानि के लाल परे हौ।।
बिछुरैं मिलिजात मिलैं बिछुरैं यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनन्द छाय रहो नित ही हित प्यासनि चातक जात परे हौ।।

सारांश यह है कि घनानन्द की विरहानुभूति में शुद्ध एवं सात्विक विरह की व्यंजना हुई है, इसमें हृदय की गहराई अधिक है, मनोव्यथा की मूक तड़पन अधिक है, अन्तर्वृत्तियों की मूक पुकार अधिक है और स्वानुभूत वेदना की यथार्थ टीस, कराह या कसक अधिक है। यही कारण है कि घनानन्द के विरह से सम्प्रेषणीयता की मात्रा सर्वाधिक है, क्योंकि इनके विरहोद्‌गारों को पढ़ते ही पाठक का हृदय विरहोदधि में निमग्न हो जाता है और इन उक्तियों को सुनते ही श्रोताओं का मन-पक्षी विरह के अनन्त आकाश में उड़ने लगता है। निस्सन्देह, घनानन्द के विरह में सम्मोहन, है, आकर्षण है, अभिव्यंजना-कौशल है और चित्त को द्रवित करने की अपूर्व क्षमता है। घनानन्द के इस विरह में कहीं भी बौद्धिकता के दर्शन नहीं होते, कहीं भी क्लिष्ट कल्पना दिखाई नहीं देती और कहीं भी दूरारूढ़ भावना दृष्टिगोचर नहीं होती,

अपितु सर्वत्र हृदय पक्ष की प्रबलता दिखाई देती है, सहज कल्पना दिखाई देती है, स्वाभाविक उत्कंठा दिखाई देती है, प्राकृतिक अभिलाषा दिखाई देती है और नैसर्गिक लालसा दिखाई देती है। अपनी यथार्थता, सात्विकता, पवित्रता एवं आध्यात्मिकता के कारण ही घनानन्द की विरहानुभूति सर्वोत्कृष्ट और अपनी इसी सात्विक विरह-भावना के कारण घनानन्द हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट विरही कवि हैं।